

भस्मांगारादिप्रयोजन उपलभ्यते तथा तपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्र को विरोधः ।

§ 792. संवरहेतु¹त्वादावुद्दिष्टाया गुप्तेः स्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥4॥

§ 793. योगो व्याख्यातः 'कायवाङ्मनःकर्म योगः' इत्यत्र । तस्य स्वेच्छाप्रवृत्तिनिवर्तनं निग्रहः । विषयसुखाभिलाषार्थ²प्रवृत्तिनिषेधार्थं सम्यग्विशेषणम् । तस्मात् सम्यग्विशेषणविशिष्टात् संक्लेशाप्रादुर्भावपरात्कायादियोगनिरोधे सति तन्निमित्तं कर्म नास्त्वतीति संवरप्रसिद्धिरवगन्तव्या । सा त्रितयी कायगुप्तिर्वागुप्तिर्मनोगुप्तिरिति ।

§ 794. तत्राशक्तस्य मुनेर्निरवद्यप्रवृत्तिस्थापनार्थमाह—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥5॥

§ 795. 'सम्यक्' इत्य³नुवर्तते । तेनेर्यादयो विशेष्यन्ते । सम्यगीर्या सम्यग्भाषा सम्यगेषणा सम्यगादाननिक्षेपौ सम्यगुत्सर्ग इति । सा एताः पञ्च समितयो विदितजीवस्थानादिविधेर्मुनेः प्राणिपीडापरिहाराभ्युपाया वेदितव्याः । तथा प्रवर्तमानस्यासंयमपरिणामनिमित्तकर्मास्त्रवात्संवरो भवति ।

§ 796. तृतीयस्य संवरहेतोर्धर्मस्य भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

उपलब्ध होते हैं वैसे ही तप अभ्युदय और कर्मक्षय इन दोनोंका हेतु है ऐसा होने में क्या विरोध है ।

§ 792. गुप्तिका संवरके हेतुओंके प्रारम्भमें निर्देश किया है, अतः उसके स्वरूपका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

योगोंका सम्यक् प्रकारसे निग्रह करना गुप्ति है ॥4॥

§ 793. 'कायवाङ्मनःकर्म योगः' इस सूत्रमें योगका व्याख्यान कर आये हैं । उसकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का बन्द होना निग्रह है । विषय-सुखकी अभिलाषाके लिए की जानेवाली प्रवृत्तिका निषेध करनेसे लिए 'सम्यक्' विशेषण दिया है । इस सम्यक् विशेषण युक्त संक्लेशको नहीं उत्पन्न होने देनेरूप योगनिग्रहसे कायादि योगोंका निरोध होने पर तन्निमित्तक कर्म आस्रव नहीं होता है, इसलिए संवरकी प्रसिद्धि जान लेना चाहिए । वह गुप्ति तीन प्रकारकी है—काय-गुप्ति, वचनगुप्ति और मनोगुप्ति ।

§ 794. अब गुप्तिके पालन करनेमें अशक्त मुनिके निर्दोष प्रवृत्तिकी प्रसिद्धिके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं ॥5॥

§ 795. यहाँ 'सम्यक्' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । उससे ईर्यादिक विशेष्यपनेको प्राप्त होते हैं—सम्यगीर्या, सम्यग्भाषा, सम्यगेषणा, सम्यगादाननिक्षेप और सम्यगुत्सर्ग । इस प्रकार कही गयी ये पाँच समितियाँ जीवस्थानादि विधिको जाननेवाले मुनिके प्राणियोंकी पीडा-को दूर करनेके उपाय जानने चाहिए । इस प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवालेके असंयमरूप परिणामोंके निमित्तसे जो कर्मोंका आस्रव होता है उसका संवर होता है ।

§ 796. तीसरा संवरका हेतु धर्म है । उसके भेदोंका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

1. --हेतुत्वादा-- । 2. --पार्थवृत्तिनियमनार्थं सम्य- ता. ना. । 3. इति वर्तते ता. ।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागार्किचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥6॥

§ 797. किमर्थमिदमुच्यते ? आद्यं प्रवृत्तिनिग्रहार्थम्, तत्रासमर्थानां प्रवृत्त्युपायप्रदर्शनार्थं द्वितीयम् । इदं पुनर्दशविधधर्माख्यानं¹ समितिषु प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं वेदितव्यम् । शरीर-स्थितिहेतुमार्गणार्थं परकुलान्यु²पगच्छतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशप्रहसनावज्ञाताडनशरीरव्यापादनादीनां संनिधाने कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा । जात्यादिमदावेशादभिमानाभावो मार्दवं माननिर्हरणम् । योगस्यावक्रता आर्जवम् । प्रकर्षप्राप्तलोभान्निवृत्तिः शौचम् । सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधु वचनं सत्यमित्युच्यते । ननु चैतद् भाषासमितावन्तर्भवति ? नैष दोषः; समितौ प्रवर्तमानो मुनिः साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहारं कुर्वन् हितं मितं च ब्रूयात् अन्यथा रागादनर्थदण्डदोषः स्यादिति वाक्समिति रित्यर्थः । इह पुनः संतः प्रव्रजितास्तद्भवता वा तेषु साधु सत्यं ज्ञानचारित्र्य³शिक्षणादिषु बह्वपि कर्तव्यमित्यनुज्ञायते धर्मोपबृंहणार्थम् । समितिषु वर्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारस्संयमः । कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः । तदुत्तरत्र वक्ष्यमाणं द्वादशविकल्पमवसेयम् । संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्धिनिवृत्तिरार्किचन्यम् । नास्य⁴ किंचनास्तीत्यर्किचनः तस्य भावः कर्म वा आर्किचन्यम् । अनुभूताङ्गनास्मरणकथाश्रवण-

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आर्किचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकारका धर्म है ॥6॥

§ 797. शंका—यह किसलिए कहा है ? समाधान—संवरका प्रथम कारण प्रवृत्तिका निग्रह करनेके लिए कहा है । जो वैसा करनेमें असमर्थ है उन्हें प्रवृत्तिका उपाय दिखलानेके लिए दूसरा कारण कहा है । किन्तु यह दश प्रकारके धर्मका कथन समितियोंमें प्रवृत्ति करनेवालेके प्रमादका परिहार करनेके लिए कहा है । शरीरकी स्थितिके कारणकी खोज करनेके लिए पर कुलोंमें जाते हुए भिक्षुको दुष्ट जन गाली-गलौज करते हैं, उपहास करते हैं, तिरस्कार करते हैं, मारते-पीटते हैं और शरीरको तोड़ते-मरोड़ते हैं तो भी उनके कलुषताका उत्पन्न न होना क्षमा है । जाति आदि मद्दोंके आवेशवश होनेवाले अभिमानका अभाव करना मार्दव है । मार्दवका अर्थ है मानका नाश करना । योगोंका वक्र न होना आर्जव है । प्रकर्षप्राप्त लोभका त्याग करना शौच है । अच्छे पुरुषोंके साथ साधु वचन बोलना सत्य है । शंका—इसका भाषासमितिमें अन्तर्भाव होता है ? समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि समितिके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि साधु और असाधु दोनों प्रकारके मनुष्योंमें भाषाव्यवहार करता हुआ हितकारी परिमित वचन बोले, अन्यथा राग होनेसे अनर्थदण्डका दोष लगता है यह वचनसमितिका अभिप्राय है । किन्तु सत्य धर्मके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि सज्जन पुरुष, दीक्षित या उनके भक्तोंमें साधु सत्य वचन बोलता हुआ भी ज्ञान चारित्र्यके शिक्षण आदिके निमित्तसे बहुविध कर्तव्योंकी सूचना देता है और यह सब धर्मकी अभिवृद्धिके अभिप्रायसे करता है, इसलिए सत्य धर्मका भाषासमितिमें अन्तर्भाव नहीं होता । समितियोंमें प्रवृत्ति करनेवाले मुनि के उनका परिपालन करनेके लिए जो प्राणियोंका और इन्द्रियोंका परिहार होता है वह संयम है । कर्मक्षयके लिए जो तपा जाता है वह तप है । वह आगे कहा जानेवाला बारह प्रकारका जानना चाहिए । संयतके योग्य ज्ञानादिका दान करना त्याग है । जो शरीरादिक उपात्त हैं उनमें भी संस्कारका त्याग करनेके लिए 'यह मेरा है' इस प्रकारके अभिप्रायका त्याग करना आर्किचन्य है । जिसका कुछ नहीं है वह अर्किचन है और उसका भाव या कर्म आर्किचन्य है । अनुभूत स्त्रीका स्मरण न करनेसे, स्त्री-

1. --ख्यानं प्रवर्तं— ता. । 2. --न्युपयतो भिक्षो ता. । 3. --रित्रलक्षणा-- मु. । 4. --नास्ति किंचना-स्याकि-- मु., दि. 1, दि. 2 ।

स्त्रीसंस्कृतशयनासनादिवर्जनाद् ब्रह्मचर्यं परिपूर्णमवतिष्ठते । स्वतन्त्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थो वा ¹गुरुकुल-
वासो ब्रह्मचर्यम् । दृष्टप्रयोजनपरिवर्जनार्थमुत्तमविशेषणम् । तान्येवं भाव्यमानानि धर्मव्यपदेश-
भाज्जिस्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्भावनाप्रणिहितानि संवरकारणानि भवन्ति ।

§ 798. आह, क्रोधाद्यनुत्पत्तिः क्षमादिविशेषप्रत्यनीकालम्बनादित्युक्तम् । तत्र कस्मात्क्ष-
मादीनयमवलम्बते नान्यथा प्रवर्तते इत्युच्यते । यस्मात्तप्तायःपिण्डवत्क्षमादिपरिणतेनात्महितैषिणा
कर्तव्याः—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्त्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वा-
ख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥7॥

§ 799. इमानि शरीरेन्द्रियविषयोपभोगद्रव्याणि समुदयरूपाणि जलबुद्बुदवदनवस्थित-
स्वभावानि गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि, मोहादत्राज्ञो नित्यतां
मन्यते । न किञ्चित्संसारे समुदितं ध्रुवमस्ति आत्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तन-
मनित्यतानुप्रेक्षा । एवं ²ह्यस्य भव्यस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वङ्गाभावाद् भुक्तोज्झितगन्धमाल्या-
दिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ।

§ 800. यथा—मृगशावस्यैकान्ते बलवता क्षुधितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिभूतस्य न

विषयक कथाके सुननेका त्याग करनेसे और स्त्रीसे सटकर सोने व बैठनेका त्याग करनेसे परिपूर्ण
ब्रह्मचर्य होता है । अथवा स्वतन्त्र वृत्तिका त्याग करनेके लिए गुरुकुलमें निवास करना ब्रह्मचर्य
है । दिखाई देनेवाले प्रयोजनका निषेध करनेके लिए क्षमादिके पहले उत्तम विशेषण दिया है ।
इस प्रकार जीवनमें उतारे गये और स्वगुण तथा प्रतिपक्षभूत दोषोंके सद्भावमें यह लाभ और
यह हानि है इस तरहकी भावनासे प्राप्त हुए ये धर्मसंज्ञावाले उत्तम क्षमादिक संवरके कारण
होते हैं ।

§ 798. क्षमादि विशेष और उनके उलटे कारणोंका अवलम्बन आदि करनेसे क्रोधा-
दिकी उत्पत्ति नहीं होती है यह पहले कह आये हैं । उसमें किस कारणसे यह जीव क्षमादिकका
अवलम्बन लेता है, अन्यथा प्रवृत्ति नहीं करता है इसका कथन करते हैं । यतः तपाये हुए लोहेके
गोलेके समान क्षमादिरूपसे परिणत हुए आत्महितैषीको करने योग्य—

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि-
दुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्वका बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं ॥7॥

§ 799. ये समुदायरूप शरीर, इन्द्रियविषय, उपभोग और परिभोग द्रव्य जलके बुल-
बुलेके समान अनवस्थित स्वभाववाले हैं तथा गर्भादि अवस्थाविशेषोंमें सदा प्राप्त होनेवाले
संयोगोंसे विपरीत स्वभाववाले हैं । मोहवश अज्ञ प्राणी इनमें नित्यताका अनुभव करता है पर
वस्तुतः आत्माके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगस्वभावके सिवा इस संसारमें अन्य कोई भी पदार्थ
ध्रुव नहीं है इस प्रकार चिन्तन करना अनित्यानुप्रेक्षा है । इस प्रकार चिन्तन करनेवाले इस
भव्यके उन शरीरादिमें आसक्तिका अभाव होनेसे भोगकर छोड़े हुए गन्ध और माला आदिके
समान वियोग कालमें भी सन्ताप नहीं होता है ।

§ 800. जिस प्रकार एकान्तमें क्षुधित और मांसके लोभी बलवान् व्याघ्रके द्वारा दबोचे
गये मृगशावकके लिए कुछ भी शरण नहीं होता उसी प्रकार जन्म, जरा, मृत्यु और व्याधि आदि